● आलोचनात्मक प्रश्न ●

इकाई-१

इतिहास-दर्शन, काल-विभाजन, आदिकालीन काव्य और कवि

प्र. १. ★ हिन्दी साहित्य के इतिहास-दर्शन और इतिहास-लेखन की परंपरा का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

★ साहित्येतिहास में काल-विभाजन और नामकरण की समस्या की चर्चा कीजिए ।

★ हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा का परिचय देते हुए काल-विभाजन और नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालिए ।

★ हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न युगों के नामकरण की चर्चा कीजिए ।

★ हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन की चर्चा कीजिए ।

उत्तर : १.

(रूपरेखा : (१) पूर्वभूमिका (२) हिन्दी साहित्य के इतिहास दर्शन की परंपरा (३) हिन्दी साहित्य के इतिहास काल-विभाजन और नामकरण (४) उपसंहार)

(१) पूर्वभूमिका

इतिहास की रचना के लिए बिखरी हुई सामग्री का संचय आवश्यक होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने के लिए राज्याश्रम, धर्माश्रय, लोकाश्रय

आदि क्षेत्रों से सम्बन्ध रखनेवाली रचनाओं का अवलोकन अपेक्षित है । प्रत्येक काल की भावनाएँ तथा विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । उन्हीं के अध्ययन करने का नाम साहित्येतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन है । यह अध्ययन अन्तर्बाह्य दोनों साक्ष्यों के आधार पर होता है । रचनाकार द्वारा किया गया आत्म-परिचय अथवा अपनी रचना के विषय में दिया गया परिचय '**अन्तः साक्ष्य**' और रचनाकार के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा दिया गया परिचय '**बाह्यसाक्ष्य**' कहलाता है ।

(२) हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन (दर्शन) की परंपरा

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है । यद्यपि मध्ययुग में '**भक्तमाल**', '**दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता**', '**चौरासी वैष्णव की वार्ता**' आदि भक्त-कवियों के चरित्रविषयक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, किन्तु उन्हें हम 'साहित्य के इतिहास' की संज्ञा नहीं दे सकते । हिन्दी में व्यवस्थित इतिहास-लेखन की परंपरा का प्रारंभ उन्नीसवी शताब्दी से होता है ।

हिन्दी में साहित्येतिहास-लेखन की परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय फ्रेंच विद्वान **गार्सा द तोसी** को प्राप्त है । उन्होंने फ्रेंच भाषा में '**इस्त्वार द ला लितेरात्यूर एन्दुई से ऐन्दुस्तानी**' नामक एक ग्रंथ लिखा है । इसमें हिन्दी और उर्दू के प्रसिद्ध कवियों का विवरण अकारादिक्रम से दिया गया है । यह दो भागों में विभक्त है ।

ताँसी के बाद शिवसिंह सेंगर ने सन् १८८३ ई. में '**शिवसिंह सरोज**' नामक ग्रंथ में लगभग एक हजार कवियों का जीवन-चरित्र तथा उनकी कृतियों के नमूने प्रस्तुत किये । हिन्दी भाषा में लिखा गया यह प्रथम इतिहास-ग्रंथ है । इस ग्रंथ का परवर्ती इतिहासकारों ने विशेष लाभ उठाया है ।

इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रयास **डो. ग्रियर्सन** ने किया है । उन्होंने सन् १८८८ ई. में '**द माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तानी**' नामक एक ग्रंथ प्रकाशित कराया । यह ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मननीय है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी ग्रंथ का आधार लेकर अपने इतिहास-ग्रंथ का लेखन किया है ।

डो. ग्रियर्सन की परंपरा का विकास हमें मिश्रबन्धु द्वारा लिखित '**मिश्रबन्धु विनोद**' शीर्षक ग्रंथ में मिलता है । यह ग्रंथ चार भागों में विभाजित है । काल-विभाजन की दृष्टि से मिश्रबन्धुओं का प्रयास अधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होता है ।

हिन्दी साहित्य के सुव्यवस्थित इतिहासलेखन का प्रथम प्रयास **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने किया है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सन् १९२९ ई. में प्रकाशित उनका '**हिन्दी साहित्य का इतिहास**' अपने ढंग का अनूठा इतिहास-ग्रंथ है । इसमें इतिहास की व्याख्या युगीन परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के आधार पर की गयी है।

आचार्य शुक्ल के इतिहास-लेखन के लगभग दशाब्दी बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने '**हिन्दी साहित्य की भूमिका**' प्रस्तुत करने इतिहासलेखन की परंपरा को आगे

बढ़ाया । इस ग्रंथ के अतिरिक्त उनके **'हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास'**, **'हिन्दी साहित्य का आदिकाल'** इत्यादि ग्रंथों में भी साहित्य के इतिहास-सम्बन्धी खोजपूर्ण सामग्री प्रकाशित हुई है ।

डो. रामकुमार वर्मा' आचार्य द्विवेदी के साथ ही इतिहास-लेखन के क्षेत्र में आये । उनके द्वारा लिखित **'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'** सन् १९३८ ई. में प्रकाशित हुआ । इसमें किंचित् परिवर्तन के साथ आचार्य शुक्ल की परंपरा का अनुसरण किया गया है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परवर्ती परंपरा में **'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास'** (डो. गणपतिचन्द्र गुप्त), **'हिन्दी साहित्य का अतीत'** (डो. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र), **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** (संपा. डो. नगेन्द्र) इत्यादि ग्रंथ विशेष, उल्लेख हैं । अनेक विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विशेष साहित्य को लेकर अनेक ग्रंथ लिखे हैं । इस प्रकार के ग्रंथों में **'आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि'** (डो. राममूर्ति त्रिपाठी), **'रीतिकालीन साहित्य की भूमिका'** (डो. नगेन्द्र), **'आधुनिक साहित्य का इतिहास'** (डो. बच्चन सिंह) आदि ग्रंथों का समावेश होता है ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहासलेखन की परंपरा का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ है, परन्तु बीसवीं शताब्दी में यह परंपरा पर्याप्त रूप में विकसित हुई है और अनेक इतिहासकारों ने वैज्ञानिक आकलन करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

(३) हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण

हिन्दी में साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन सबसे पहले **डो. गियर्सन** के ग्रंथ में दृष्टिगत होता है । उनका ग्रंथ अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय काल का सूचक है, किन्तु इस काल-विभाजन का कोई निश्चित आधार नहीं है । इस दिशा में मिश्र बन्धुओं का प्रयास प्रशंसनीय है । उनका विभाजन इस प्रकार है :

१.	प्रारंभिक काल	–	पूर्वारंभिक काल
			उत्तरारंभिक काल
२.	माध्यमिक काल	–	पूर्व माध्यमिक काल
			प्रौढ़ माध्यमिक काल
३.	अलंकृत काल	–	पूर्वालंकृत काल
			उत्तरालंकृत काल
४.	परिवर्तन काल		
५.	वर्तमान काल ।		

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में ९०० वर्षों के इतिहास निम्नोक्त चार काल खंडों में विभाजित किया है :

१. आदिकाल (वीरगाथाकाल) सं. १०५० से १३५७ तक
२. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सं. १३७५ से १७०० तक
३. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सं. १७०० से १९०० तक
४. आधुनिक काल (गद्यकाल) सं. १९०० से १९८४ तक

यह काल-विभाजन और नामकरण विशेष महत्त्वपूर्ण है । परवर्ती इतिहासक ने इसीका प्रायः अनुसरण किया है ।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने शुक्लजी का अनुसरण करते हुए उनके विभाजन ए नामकरण में किंचित् परिवर्तन इस प्रकार किया है :-

१. संधिकाल (सं. ७५० से १००० तक)
२. चारणकाल (सं. १००० से १३७५ तक)
३. भक्तिकाल (सं. १३७५ से १७०० तक)
४. रीतिकाल (सं. १७०० से १९०० तक)
५. आधुनिक काल (सं. १९०० से १९८४ तक)

इस विभाजन में 'आदिकाल' को दो उपखण्डों में बाँटा गया है । शेष वर्गीकरण शुक्लजी के समान ही हैं ।

इस प्रकार काल-विभाजन और नामकरण के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं, तथापि अधिकतर विद्वान आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल अथवा प्राचीनकाल तथा आधुनिककाल इस विभाजन और नामकरण को स्वीकार करते हैं । आधुनिक काल को कई उपखण्डों में बांटा गया है ।

(४) उपसंहार

हिन्दी में साहित्य के इतिहास के लेखन की परंपरा बहुत प्राचीन नहीं है, फिर भी इसमें अनेक इतिहास-ग्रंथ सुचारु एवं सुरेख ढंग से लिखे गये हैं । इस परंपरा में आचार्य शुक्ल का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है । उनका काल-विभाजन एवं नामकरण विशेष प्रचलित एवं प्रभावशाली है । परवर्ती इतिहास ग्रंथों में इस दिशा में विशेष प्रयास किया है ।

प्र. २. ★ हिन्दी साहित्य के आदिकालीन साहित्य के परिवेश पर प्रकाश डालिए ।
★ आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए बतलाइए कि उनका तत्कालीन साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
★ सिद्ध कीजिए 'हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल या वीरगाथाकाल तत्कालीन परिवेश और परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है ।

★ आदिकाल के आविर्भाव में कारणभूत प्रमुख परिस्थितियों की चर्चा कीजिए ।

★ आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की विस्तृत चर्चा कीजिए ।

उत्तर : २.

(रूपरेखा : (१) पूर्वभूमिका (२) आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ (३) आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ (४) आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ (५) विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव (६) उपसंहार)

(१) पूर्वभूमिका

साहित्य मानव-समाज की भावनात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है । किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए उस काल के परिवेश एवं परिस्थितियों को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक है । हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल लगभग **ईसा की आठवीं शताब्दी** से आरंभ होता है । इस काल के आविर्भाव में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

(२) आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ

आदिकाल की अवधि ७६९ ई. से १४१८ ई. तक है । इस काल की राजनीतिक परिस्थिति वर्धन-साम्राज्य के पतन से आरम्भ होती है । अन्तिम वर्धन-सम्राट हर्षवर्धन के समय से ही उत्तरी भारत पर यवन-आक्रमण आरम्भ हो गये थे । हर्षवर्धन ने दृढ़ता से उनका सामना किया, किन्तु आक्रमणों की उस आँधी को वह रोक न सका। उसकी समस्त शक्ति उस प्रतिरोध में ही समाप्त हो गयी । अरबों, तुर्कों आदि यवन आक्रमणकारियों ने भारतीय राजसत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया ।

भारत की सुदृढ़ राजसत्ता सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ई.) के बाद विकेन्द्रित हो गयी थी । अलग-अलग सत्ताधारी राजवंश आपसी संघर्ष से शक्तिहीन हो गये थे। प्राचीन 'गणराज्यों' का 'सर्वनाश' हो गया था । गणराज्यों के नष्ट हो जाने से जनसाधारण की राजनीतिक चेतना का सर्वथा लोप हो गया था । आठवीं शताब्दी तक देश में निरंकुश एकतंत्र शासन प्रणाली कायम हो गयी थी ।

राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था के कारण इस काल में सामन्ती प्रथा प्रधान हो गयी थी । स्वार्थी सामंतों में जनकल्याण की भावना का लोप हो गया था । वे पारम्परिक कलह में डूब गये थे । सोमनाथ के मंदिर को महमूद ने परस्पर संघर्षरत देशी राजाओं के बिना प्रतिरोध लूट लिया था । बारहवीं शताब्दी का अंतिम चरण भारतवर्ष के इतिहास में सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण समय है । इसी समय भारत की स्वतंत्रता विदेशी जातियों के हाथों से छिन्न-भिन्न हो गयी थी । पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द आदि

राजाओं के पारस्परिक युद्ध सामान्य बन गये थे । इस युग के कवि भी हाथ में तलवार लेकर अपने आश्रयदाता के साथ रणमैदान में निकल पड़ते थे । चन्दवरदायी ऐसे ही कवि थे । उनके विषय में कहा गया है –

'रवि छंडक तप ताप कर
तड वर छंडइ कवि चन्द ।'

यह ऐसा कवि था जो तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था । यही इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों की एक विचित्र देन है । जो कवि धार्मिक भावना से अनुप्राणित थे, वे ही किसी की परवाह किये बिना काव्य-साधना करते थे; किन्तु जो कवि राजाश्रित हो जाते थे, उन्हें अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्यरचना करनी पड़ती थी । धर्म और राजाश्रय से मुक्त रहकर कविता करनेवाले कवियों की प्रतिभा के विकास के लिए उचित वातावरण नहीं था ।

(३) आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ

आदिकाल में जो राजनीतिक अस्थिरता फैल गयी थी, उसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर भी पड़ा । युद्ध की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गयी थी कि सुन्दर कन्याओं का विवाह बिना रक्तपात के होता ही न था । उच्चवर्ग के लोग भोग-लिप्त हो गये थे। निम्नवर्ग को कठोर परिश्रम करना पड़ता था । नारी भोग का साधन बन गयी थी। यह क्रय-विक्रय तथा अपहरण की वस्तु मानी जाती थी । इस सम्बन्ध में कहा गया है :

'जिही की बिटिया सुंदर देखी ।
तिहि के द्वार धरी तलवार ॥'

जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी । युद्धों के समय उसे बुरी तरह पीसा जाता था । जाति-पाँति के बन्धन कड़े होते जा रहे थे। उच्च वर्ण के लोग भोग करने के लिए थे तथा निर्धन-वर्ण के लोग मानो श्रम करने के लिए ही पैदा हुए थे । सामान्य जन के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। साम्प्रदायिक तनाव बढ़ने के कारण साहित्य और शास्त्र का ज्ञान सामान्य जाति की नारियों व पुरुषों के लिए अप्राप्य बना दिया गया था । सती प्रथा भी इस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी । फलतः सामान्य जाति की नारी के लिए पुरुष का जीवन और मृत्यु दोनों ही भयंकर घटना बन जाते थे । अनेक प्रकार के अन्धविश्वास बढ़ते जा रहे थे ।

आदिकालीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर अवलंबित था । समाज में प्रत्येक वर्ण का कर्म निश्चित था, किन्तु कर्माश्रित वर्णव्यवस्था का आदर्श धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था । उनके स्थान पर समाज में जन्माश्रित वर्ण का महत्त्व बढ़ता जा रहा

था । क्षत्रिय अपने शौर्यप्रदर्शन में तल्लीन थे । इस सम्बन्ध में कवि जल्हणचन्द्र की यह उक्ति स्मरणीय है :

'बाहरा बरस लौं कुक्कुर जीवै,
और तेरह बरस लौं सियार ।
बरस अठारह क्षत्री जीवै,
आगे जीवन को धिक्कार ॥'

क्षत्रियों की इस युद्धप्रवृत्ति के कारण समाज में बाल-विवाह-प्रथा और सती-प्रथा का प्रचलन हो गया था । इस प्रकार सामाजिक परिस्थितियाँ भी विषम थीं ।

(४) आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

आदिकाल में सिद्धों, नाथों तथा जैनों की धार्मिक गतिविधियों का प्रचार-प्रसार बढ़ गया था । इसी प्रकार की गतिविधियों के कारण राहुलजी ने इस काल को **'सिद्धसामंत काल'** कहा है । सिद्धों तथा नाथों के उपदेशवचनों से वर्णाश्रम के बन्धन कुछ शिथिल हो गये थे ।

भारत में मुस्लिम संस्कृति के परिवेश के समय यहाँ की विभिन्न जातियों, मतों, आचारों-विचारों आदि में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी । हर्षवर्धन के विशाल साम्राज्य ने हिन्दू धर्म और संस्कृति को राष्ट्रव्यापी एकता का आधार दिया था । इस आधार पर छोट-छोटे भेद-भाव अस्त हो गये थे तथा स्वाधीनता एवं देशभक्ति के भाव दृढ़ होने लगे थे । संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओं में जातीय गौरव की भावना अभिव्यक्त हो रही थी । स्थापत्य के क्षेत्र में विशेषतः मन्दिरों का निर्माण धार्मिक सद्भाव का द्योतक था । भुवनेश्वर, खजुराहो, पुरी, सोमनाथपुर, बेलार, काँची, तंजौर आदि स्थानों पर अनेक भव्य भन्दिर आदिकाल के आरम्भ के समय ही बनाये गये थे । आबू का जैन मन्दिर, जो भारतीय स्थापत्य का बेजोड़ नमूना है, ग्यारहवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण देन है ।

अरब इतिहासकार अलबरूनी इसी समय भारत की यात्रा पर आया था । वह भारत की कला और संस्कृति का उत्कर्ष देखकर बहुत ही प्रभावित हुआ था । उसने इस सम्बन्ध में लिखा है :-

'वे (हिन्दु) कला के अत्यन्त उच्च सोपान पर आरोहण कर चुके हैं । हमारे लोग (मुसलमान) जब उन्हें (मंदिर आदि को) देखते हैं, तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं ।'

इस प्रकार आदिकाल की भारतीय संस्कृति उत्कर्ष-प्राप्त निजी परम्परा के ह्रास तथा इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है, जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवन्त स्वरूप बहुत कम मिलता है ।

(५) विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव

आठवीं शताब्दी से ग्यारवीं शताब्दी तक भारत की राजनीतिक परिस्थिति हिन्दु सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लाम सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है। इसीने उस मन:स्थिति को जन्म दिया, जिसमें कोई भी एक प्रवृत्ति साहित्य में प्रधान न हो सकी ।

समाज पर राजनीति और धर्म का ही सवसे अधिक प्रभाव पड़ता है । राज्याश्रय अथवा सांप्रदायिक महत्त्व के कारण जातियों में ऊँच-नीच की भावना प्रबल होने लगी थी । भाँति-भाँति के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र, जप-तप आदि का प्रचार-प्रसार समाज में बढ़ गया था । दुर्भिक्ष, युद्ध और महामारियों के कारण समाज में अस्थिरता एवं अनास्था का वातावरण छा गया था । कला और संस्कृति के क्षेत्र में एक नयी चेतना और उभर आयी थी ।

(६) उपसंहार

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अराजकता, अव्यवस्था और अस्थिरता का काल है । विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव इस युग के साहित्य पर स्पष्टत: दिखायी देता है । इस युग की तीनों साहित्यिक धाराएँ (संस्कृत-साहित्य-धारा, प्राकृत-साहित्य-धारा और अपभ्रंश-साहित्य-धारा) अपने परिवेश से प्रभावित हैं ।